[Conference- Innovation in Music & Dance :January,2015] ISSN- 2350-0530(O) 2394-3629(P)
DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v3.i1SE.2015.3473

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

उत्तराखण्ड की सामाजिक पृष्ठभूमि और लोकसंगीत का सम्बन्ध

डॉ. सन्तोष पाठक
संगीत विभाग
मनीषा भट्ट
शोधार्थी
वनस्थली विद्यापीठ (राज.)

समाज शब्द का प्रयोग हम बहुधा दैनिक बोलचाल की भाषा में करते हैं, समाजशास्त्र की भाषा में कहें तो व्यक्तियों के समूह को ही समाज नहीं कहा जा सकता, व्यक्तियों में पाये जाने वाले पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या को ही समाज कहा जाता है। **'मैकाइवर** एवं **पेज** ने इस संदर्भ में उचित ही कहा है कि ''समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है।'' सामाजिक सम्बन्धों के लिए तीन बातें आवश्यक है –

1. व्यक्तियों को एक–दूसरे का आभास (जानकारी) होना।
2. उनमें अर्थपूर्ण व्यवहार होना, तथा
3. उनका एक–दूसरे के व्यवहार से प्रभावित होना।

विश्व मानव समाज की वृहत्तम इकाई है और इसका महत्वपूर्ण अंग है, समाज। लोक साहित्य, लोककला और परिणामस्वरूप लोक संस्कृति इस जीवन पद्धति की निर्मिति है। एक परिवार से जुड़कर अनेक परिवार समाज बनाते हैं। परिवार में प्रत्येक व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। समस्त विश्व में भारत संस्कृति प्रधान देश है। संस्कृति शब्द का सम्बन्ध संस्कार से है जिसका अर्थ है – संशोधन करना, परिष्कार करना एवं उत्तम बनाना। संस्कृति शब्द अंग्रेजी शब्द कल्चर का पर्यायवाची बना। इसका अर्थ है पैदा करना या सुधारना। संस्कृति में ही संस्कार छिपे होते हैं। धर्म प्रधान भारत में संगीत कला का उद्‌गम भले ही मानव की सहज भावनाओं एवं प्रेरणाओं के अभ्यंतर हुआ हो। उसका विकास व पालन–पोषण संगीत की कोख में हुआ है। उत्तराखण्ड की सामाजिक पृष्ठभूमि और लोकसंगीत का गहरा सम्बन्ध है। ''गढ़वाल तथा कुमाऊँ मण्डल, आद्यशक्ति पार्वती की जन्मभूमि उत्तराखण्ड, प्राचीनकाल से ही ऋषि–मुनियों की तपोभूमि रही है, महाकवि कालिदास ने अपने महाकाव्य के मंगल श्लोक में हिमालय की वंदना कर नगाधिराज को देवात्मा एवं पृथ्वी का मानदण्ड कहा है। देवभूमि के इन दोनों केन्द्रों ने अपने प्रभाव क्षेत्र में लिया था जिस कारण केदार के प्रभाव क्षेत्र को 'केदारखण्ड' और कैलाश मानसरोवर के प्रभाव क्षेत्र को 'मानसखण्ड' कहा जाने लगा। उत्तराखण्ड की आध्यात्मिक, सांस्कृतिक एवं पौराणिक महत्ता की भाँति यहाँ का इतिहास भी मानव सभ्यताओं के विकास का साक्षी है। प्रागैतिहासिक काल से ही इस भू–भाग में मानवीय क्रियाकलापों के प्रमाण मिलते हैं। नैसर्गिक सुविधाओं के साथ–साथ यह क्षेत्र आध्यात्मिक रूप से आर्य सभ्यता और संस्कृति का केन्द्र रहा है। उत्तराखण्ड के दोनों मण्डलों गढ़वाल एवं कुमाऊँ का लोकसंगीत का सामाजिक पृष्ठभूमि से घनिष्ठ सम्बन्ध है। उत्तराखण्ड की सामाजिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करें तो यहाँ का स्वरूप, देश के अन्य राज्यों की भाँति विभिन्न धर्मावलम्बियों के मध्य सद्‌भावना, प्रेम एवं सामंजस्य का प्रतिरूप है। यद्यपि राज्य में हिन्दूओं का बाहुल्य है तथापि हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई अन्य धर्मों के निवासी मिल–जुलकर रहते हैं, गढ़वाल तथा कुमाऊँ में ब्राह्मणों के उपवर्ग पाये जाते हैं। राजपूत, शिल्पकार भी यहाँ रहते हैं। यहाँ का लोकसंगीत प्राचीनकाल से ही प्रचलित है। ''लोक संगीत का अर्थ जनसाधारण, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित ''संगीत'' से सही है। लोकसंगीत जनसाधारण का इतिहास है। इसमें भारतीय संगीत का सच्चा दर्शन मिलता है।

पं ओंकार नाथ ठाकुर के अनुसार – ''देशी संगीत के विकास की पृष्ठभूमि ''लोकसंगीत'' है।''

चैम्बर शब्दकोश के अनुसार ''ऐसा कोई भी संगीत जिसका उद्‌गम लोक में हुआ है और जो परम्परागत रूप में परिवर्तियों को मिला हो, 'लोकसंगीत' कहलाता है। स्थानीय भाषाओं में होने वाले परम्परागत गीत–नृत्यादि ''लोकसंगीत'' कहे जाते हैं। लोकसंगीत के गीत सरल एवं भावपूर्ण होते हैं कुछ धुने निश्चित होती है। लोकसंगीत में कहरवा, दादरा, दीपचन्दी तालों का अधिक प्रयोग होता है। सामूहिक गायन होता है, हिन्दू धर्म में सोलह संस्कारों की मान्यता प्राप्त है। नामकरण संस्कार, जनेऊ संस्कार, विवाह संस्कारों पर स्त्रियों के द्वारा मंगलगीत गाये जाते हैं। उत्तराखण्ड में विवाह संस्कार सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार माना जाता है। जिसमें वर–वधू को राम–सीता, शिव–पार्वती कहा जाता है। ''विवाह संस्कारों में ब्राह्मणों और राजपूतों

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

के रीति–रिवाजों में भिन्नता है। विवाह के 4–5 दिन पहले गणपति पूजन होता हैं फिर तिल और चावल के लड्डू व सुवाले (मट्ठियाँ) बनते हैं। कन्यादान अन्दर होता है, और फेरे बाहर लिए जाते हैं।

''शकुना दे शकुना दे, सब सिद्धि
काज ए अति नीको शुभ रंगीलो
पाटैल अंचलि कमली को फूल सोही फूल
मोलवंप्त गणेश, रामाचन्द, लक्ष्मीमन . . .

इस प्रकार के मंगल गीत गाये जाते हैं। उत्तराखण्ड के लोकगीतों में सांगीतिक तत्व कूट–कूट कर भरे हुए हैं। लोकगीतों का मूल मानव प्रवृत्तियों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। ''प्राकृतिक पदार्थों का सौन्दर्य देखने से भाव विभोर यदि मनुष्य गीत गाता है तो उसका भयंकर रूप देखकर स्तुति भी करता है। लोकगीतों के बीज जातीय संगीत में विद्यमान रहते हैं। इनमें अलंकार नहीं केवल रस है। छन्द नहीं केवल लय है। लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है। सामान्य लोक व्यवहार के उपयोग में आने वाली जिस वाणी को मानव अपने आनन्द तरंग को सहज लयबद्ध रूप में उद्‌भुत करता है वही लोकगीत है। लोकगीतों का प्रथम चरण चिन्ह वैदिक ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। गीतों में चौफुला, छोपती गीत, ऋतुरैण, झुमैलो हुडकी–बौन, रामी, घड्या गीत (रणिहाट नी जाणो गजसिंह) उपर्युक्त गीतों में अध्ययनोंपरान्त हमें सामाजिक परिवेश में गीतों में निबद्ध एवं अनिबद्ध दोनों शैली के गीत प्राप्त होते हैं। रागों की दृष्टि से आध्यात्मिक गीतों की अपेक्षा सामाजिक गीतों में अधिक राग रूप प्राप्त होते हैं। राग पहाड़ी भूपाली, दुर्गा, मालकौंस, जोग, जोगकौंस, भीमपलासी, मिश्र खमाज, जलधर केदार, गोरख कल्याण, मधमाद सारंग, गौड मल्हार, मल्हार काफी इत्यादि रागों की बहुलता पाई जाती है।'' लोकनृत्यों में छपेली, चांचरी, झोड़ा, ढुसका, देव नृत्य, पाण्डव नृत्य, होली नृत्य, चांचरी नृत्य, छोपती नृत्य, चौंफला, झुमैला, थड्या नृत्य, बाजूबन्द, तांदी, खदेड, झोड़ा इत्यादि लोकनृत्यों के द्वारा उत्तराखण्ड की सामाजिक पृष्ठभूमि दृष्टिगोचर होती है। देवी–देवताओं को प्रसन्न करने के लिए उत्तराखण्ड में जागर गीत, गाये जाते हैं। जिसमें मृदंग, हुड़का, डमरू का प्रयोग होता है। लोकवाद्यों में तुर्री, शंख, भंकोरा, तणसिंहा, मोछांग, बाँसुरी, मशकबाजा, सारंगी, डफली, अलगोजा, मंजीरा, ढोल, दमाऊँ, डमरू, डौंर थाली इत्यादि वाद्यों का प्रयोग होता है।

''हिन्दू धर्म की एक प्रमुख विशेषता है यहाँ वर्ष भर भिन्न–भिन्न समय पर मनाये जाने वाले त्यौहार, उत्सव एवं व्रत होते हैं। उत्तराखण्ड में मनाये जाने वाले त्योहार न केवल मनोरंजन करने में सहायक है वरन् ये दूर देश में रहने वाले परिजनों एवं रिश्तेदारों को परस्पर मिलाने में भी योगदान देते हैं, उत्तराखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों के पुरूष आधिकांशतयः अपने गाँव से बाहर जीविकोपार्जन के लिए चले जाते हैं तथा वे वर्ष में कभी–कभार इन त्योहारों पर मिल जाते हैं, उत्तराखण्ड के निवासियों द्वारा मनाये जाने वाले कुछ त्योहार प्रमुख है। फूल देई, बिखोती, हरेला, श्रावणी, पूर्णमासी, खतड़वा, घृतसंक्रान्ति, श्राद्ध, नन्दाष्टमी, मकर संक्रान्ति मनाई जाती है। फूल देई को फूल संक्रान्ति भी कहा जाता है। इस त्योहार पर बसंत ऋतु अपने यौवन पर आ चुकी होती है। बच्चे घरों की दहलीज पर जाकर गाते हैं।

फूल देई, छमा देई दैणो द्वार भर भरकर
यौ देई सौ नमस्कार, पूजे द्वार बार–बार

''बच्चों को उपहार स्वरूप लोग गुड़, पैसे चावल देते हैं। मेलों में लोकगीतों तथा लोकनृत्यों का भी आयोजन होता है। अतः उत्तराखण्ड के मेले, पर्व, त्योहारों में सांगीतिक लोकसंगीत की झलक देखने को मिलती है। यह लोकगीत, लोकनृत्य प्रायः ग्रामीणों द्वारा इसका पारम्परिक रीति–रिवाज के द्वारा इसका प्रदर्शन होता है। परन्तु वर्तमान समाज में इन सभी पारम्परिक रीति–रिवाजों की लोकप्रियता घटी है। अतः हमें चाहिये कि हम अपने लोकसंगीत का प्रचार–प्रसार एवं संरक्षण करें, ताकि उत्तराखण्ड की लोकसंस्कृति एवं लोकसंगीत की छाप पूरे विश्व मानस पटल पर अमिट रहे।

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि उत्तराखण्ड का लोकसंगीत यहाँ के सामाजिक दायरे में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। उत्तराखण्ड की सामाजिक पृष्ठभूमि में लोकसंगीत रचाा बसा है।

सन्दर्भ –

1 महाजन, डॉ. धर्मवीर; महाजन, डॉ. कमलेश, इण्डटरमीडिएट समाजशास्त्र, रिडर्स चॉइस प्रिन्ट मीडिया प्राइवेट लिमिटेड, मेरठ, पृ.सं. 9

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

2 बलोदी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, उत्तराखण्ड समग्र ज्ञानकोश, विनसर पब्लिशिंग कं., देहरादून, प्रथम संस्करण–2008, पृ.सं. 23
3 वालिया, डॉ. दीपिका, संगीत कला के विविध आयाम, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2012, पृ.सं. 9
4 तिवारी, डॉ. ज्योति, कुमाऊँनी लोकगीत तथा शास्त्रीय–संगीत परिवेश, कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, देहरादून, प्रथम संस्करण–2002, पृ.सं. 20,
5 वही, पृ.सं. 28
6 मैठानी, डॉ. तुष्टि, भारतीय आध्यात्मिक पृष्ठभूमि में गढ़वाली लोकसंगीत, सत्यम पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2006, पृ.सं. 85–286
7 जोशी, घनश्याम, उत्तराखण्ड का राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, प्रथम संस्करण–2003, पृ.सं. 190